21वीं सदी के उपन्यासों में प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों का द्वंद्व

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
लखनऊ से हिन्दी साहित्य विषय में
पीएच०डी० की उपाधि
हेतु प्रस्तुत

शोध-सारांशिका

शोधार्थी
सुधांशु कुमार तिवारी
नामांकन संख्या: 627 / 18

शोध निर्देशक
डॉ० बलजीत कुमार श्रीवास्तव
सहायक आचार्य

हिन्दी विभाग
भाषा एवं साहित्य विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय) (NAAC : A^{++} ACCREDITATION)
विद्या विहार, रायबरेली रोड,
लखनऊ-226025 (उ०प्र०), भारत

2024

शोध-सारांशिका

संस्कृति किसी स्थान विशेष में निवास करने वाले व्यक्ति और व्यक्ति समूहों में अंतर्निहित सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और वैयक्तिक मत-मान्यताओं के समेकित स्वरूप का नाम है। स्थान-विशेष के अनुरूप समस्त भौतिक-अधिभौतिक उन्नति तथा संपूर्ण जीवन-चर्या की सम्यक अभिव्यक्ति संस्कृति की महत्तम उपलब्धि है। संस्कृति के अंतर्गत स्थान-विशेष से सम्बन्धित दार्शनिक, वैचारिक और कलात्मक सृष्टि के समस्त स्थूल तथा सूक्ष्म तत्त्वों और तथ्यों को समग्र रूप में समाहित किया जाता है। संस्कृति भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर संवाहित धारा है। जिसके अंतर्गत परंपरा, आस्था, आदर्श और मूल्यों का पृथक और विशिष्ट स्थान है तथा इन्हीं मूल्यों में समय सापेक्ष परिवर्तन के परिणामस्वरूप संस्कृति का नवीन स्वरूप भावी पीढियों में हस्तांतरित होता है। प्राच्य मनीषा की संस्कृति संबंधी अवधारणा संस्कृति के आत्मतत्व को लक्षित करती है। इनका संस्कृति विषयक चिंतन संस्कृति को आत्मतत्त्व की परिष्कारक तथा चेतना की संस्कारक शक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है। प्राच्य विचारक संस्कृति को कालातीत ऊर्जा मानने के क्रम में भूत, भविष्य तथा वर्तमान की सीमाओं को भग्न करते हुए संस्कृति को विश्वबंधुत्व, लोक-कल्याण तथा सत्यम् शिवम् सुंदरम् की चेतना से अनुप्राणित शुभ मानते हैं। इनके मतानुसार संस्कृति मनुष्य की समस्त भौतिक तथा अधिभौतिक समुन्नति का हेतु हैं। प्राच्य विद्वानों से पृथक पाश्चात्य विद्वान संस्कृति को मनुष्य और समाज के आत्मपक्ष के समानांतर बाह्य पक्ष के रूप में भी व्याख्यायित करते है। पाश्चात्य विचारकों का संस्कृति विषयक मत संस्कृति के सामाजिक संदर्भ को अभिव्यंजित करता हैं। पाश्चात्य विद्वान संस्कृति को बौद्धिक चिंतन के समानांतर क्रिया पद्धति के रूप में भी स्थापित करते हैं। इनकी मत-मान्यताओं के अनुसार संस्कृति ज्ञान-विज्ञान, नीति-नियम, रीति-रिवाज और परंपरा, तथा कलागत उपलब्धियों का संपूर्ण समुच्चय है।

संस्कृति मूल रूप में मनुष्य के आध्यात्मिक और भौतिक पक्षों के मध्य संतुलन बनाने की विशिष्ट क्रिया है। संस्कृति संपन्न मनुष्य आध्यात्मिक और भौतिक जीवन के समन्वित

स्वरूप को धारण करता है। विद्वान चिंतकों के अनुसार संस्कृति की विकास यात्रा मंदगतीय अवश्य है किंतु यह नैरन्तर्य के साथ प्राचीन काल से निर्बाध संपादित होती आई है। मानव में प्रारंभिक जीवन के अंतर्गत शिक्षा, संस्कार और अभ्यास के द्वारा जो बीज मानव में डाले जाते हैं, वही संस्कृति के प्रारंभिक स्वरूप को निर्मित करते हैं तथा इन बीजों के फलित और विकसित होने के परिणामस्वरूप मानव-जीवन का जो परिमार्जित और परिष्कृत स्वरूप प्राप्त है, वही मानवीय स्वरूप संस्कृति की अंतिम अवस्था मानी जाती है। अतः यथार्थपरक चिंतन के आधार पर यदि हम संस्कृति की कोई परिभाषा गढ़े तो शायद ही हमें कोई ऐसी सुगठित और सर्वसम्मत परिभाषा प्राप्त हो जिसके अंतर्गत संस्कृति से संबंधित समस्त पहलुओं का समाहार हो सके। क्योंकि संस्कृति एक विशाल अवधारणा है। संस्कृति को मनुष्य ने अपने जीवन में घोल लिया है तथा संस्कृति उसकी आत्मा में मिल गई है। अतः मानव, संस्कृति को केवल व्यवहार में ला सकता हैं किंतु उसके कोई स्पष्ट स्वरूप का निर्माण नहीं कर सकता। यद्यपि संस्कृति की कोई सर्वसम्मत परिभाषा नहीं है तथापि जिन क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के माध्यम से मनुष्य अथवा समाज अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का संस्कार और परिष्कार करता है उससे संबंधित समस्त क्रियाएँ-प्रक्रियाएँ समेकित रूप से संस्कृति का निर्माण करती हैं। ये समस्त संस्कार मनुष्य को अपने पूर्वजों द्वारा पारंपरिक रूप से प्राप्त होते रहे हैं तथा संस्कृति के अभिन्न अंग और सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्त्व के रूप में पहचाने जाते हैं।

जिस प्रकार सृष्टि में विद्यमान प्रत्येक मूर्त-अमूर्त वस्तुओं का संगठन विभिन्न घटकों के माध्यम से होता है उसी प्रकार संस्कृति का निर्माण भी संस्कृति के अन्तर्भूत घटकों द्वारा होता है। तथ्य स्वयंसिद्ध है कि प्रत्येक सामाजिक संरचना का निर्माण कुछ मूलभूत तत्त्व और व्यवस्थाओं के परिणामस्वरूप होता है। सामाजिक-राजनैतिक संगठन, आर्थिक-धार्मिक व्यवस्था, कलात्मक और भाषिक अभिव्यक्तियाँ तथा वैचारिक-दार्शनिक पद्धतियाँ समेकित रूप में समाज और सामाजिक व्यवस्था का निर्माण और निर्धारण करती हैं। समाज सापेक्ष होने के कारण संस्कृति भी इन तत्त्वों और व्यवस्थाओं से प्रभावित होती है। सामाजिक व्यवस्था के इन्हीं प्रतिमानों को ही संस्कृति के मूलभूत घटकों के रूप में मान्यता प्राप्त है। संस्कृति के घटकों के आधार पर संस्कृति को सामान्यतः भौतिक तथा अधिभौतिक दो वर्गों में विभाजित किया जाता

है। संस्कृति का भौतिक पक्ष व्यक्ति के बाह्य विकास को प्रेरित और प्रदर्शित करता है जबकि संस्कृति का अधिभौतिक पक्ष व्यक्ति की आंतरिक उन्नति को प्रेरित और प्रदर्शित करता है। समाज और व्यक्ति के इसी बाह्य विकास को ही सभ्यता नाम से अभिहित किया जाता है। कहना न होगा, व्यक्ति और समाज के विकास के समस्त बाह्य उपकरण सभ्यता का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके अंतर्गत मानव-जीवन के समस्त भौतिक, अल्पकालिक और अस्थायी विकास के प्रतिमानो की गणना की जाती है जबकि संस्कृति के अंतर्गत अधिभौतिक, दीर्घकालिक तथा अपेक्षाकृत अधिक स्थायी तत्वों को संगणित किया जाता है। धर्म, अध्यात्म, नैतिकता, सदाचार, विचार और दर्शन संस्कृति के परिचायक उपकरण हैं। कहना न होगा, संस्कृति और सभ्यता व्यक्ति की आंतरिक और बाह्य चेतना के प्रतीक हैं। संस्कृति और सभ्यता दोनों का संबंध व्यक्ति और समाज से होने के कारण यद्यपि दोनों में पर्याप्त अंतर विद्यमान है तथापि संस्कृति और सभ्यता में घनिष्ठ पारस्परिक संबंध भी स्वाभाविक है।

संस्कृति एक सर्वकालिक और सार्वभौमिक ऊर्जा है। प्रत्येक देश और काल के सापेक्ष इसकी उपस्थिति सद्य-गोचर है। देश काल और परिस्थिति के साथ तादात्म्य की स्थापना संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है। यह देश, काल और परिस्थिति के अनुरूप अपना स्वरूप परिवर्धित और परिवर्तित करती है। कहना न होगा, देश और काल के सापेक्ष इसके विशिष्ट स्वरूप का निर्माण होता है। प्राच्य और पाश्चात्य देशों की भौगोलिक परिधि, देश-काल और परिस्थिति के परिणामस्वरूप पृथक-पृथक वैशिष्ट्य को धारण करती है। इन्हीं विशिष्टताओं के पार्थक्य के परिणामस्वरूप प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियों के स्वरूप में भी महत्वपूर्ण और पर्याप्त अंतर दृ ष्टिगोचर होता है। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियों के मध्य प्राप्य यही अंतर प्राच्य और पाश्चात्य सांस्कृतिक-संरचना को विशिष्टता प्रदान करता है। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति वैयक्तिक, सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक, आर्थिक सामाजिक और साहित्यिक आयामों के अंतर्गत अपनी विशिष्ट प्रवृत्ति और प्रकृति के कारण अपने पृथक और विशिष्ट स्वरूप का निर्माण करती है। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति के संदर्भ में उपर्युक्त रचना और स्वरूपगत वैशिष्ट्य स्थूल और सूक्ष्म दोनों स्तरों पर अवलोक्य है।

धार्मिक प्रतिमान के सन्दर्भ में, प्राच्य संस्कृति ईश्वरवाद, आस्तिकता, धार्मिकता, पूजा पद्धति, विश्वास, लौकिक आस्था, पारलौकिकता, अध्यात्मवाद, भाग्यवाद नियतिवाद, भावी की अवधारणा, जन्म-जन्मांतरवाद, जन्म-मृत्यु का चक्रीय क्रम, आत्मा की अमरता, आत्मतत्त्व और परमात्म तत्त्व, स्वर्ग-नरक, मोक्ष आदि की अवधारणाओं का स्वयं में समाहार किए हुए हैं। कहना अनुचित न होगा कि भारतीय संस्कृति आत्मिक, आध्यात्मिक और पारलौकिक शक्तियों को धार्मिक व्यवस्था के अंतर्गत इहलौकिक, शारीरिक शक्तियों से अधिक श्रेष्ठ मानती है। समानांतर, पाश्चात्य धार्मिक, संस्कृति के अंतर्गत यद्यपि ईश्वर की अवधारणा विद्यमान है तथापि अवतारवाद जैसी किसी भी अवधारणा को पाश्चात्य धार्मिक-व्यवस्था मान्यता नही प्रदान करती। पाश्चात्य धार्मिक-संस्कृति कर्म की शुभता और पूर्णता तथा परमपिता की कृपा को ही मोक्ष प्राप्ति का माध्यम मानती है। पाश्चात्य संस्कृति के अंतर्गत स्वर्ग प्राप्ति का आशय ईश्वर के सामीप्य की प्राप्ति से है। पाश्चात्य धार्मिक व्यवस्था के अंतर्गत आदिपाप, अशुभ और शुभ कर्म की नियति सुख, दुख, शोक आदि मान्यता और अवधारणा विद्यमान है। पाश्चात्य धार्मिक व्यवस्था के अंतर्गत ईश्वर अवतारवाद की अवधारणा विद्यमान नहीं है अपितु ईश्वर अपना प्रतिनिधि धरती पर भेजता है, वही आदर्श और पापमुक्त राज्य की स्थापना का उपक्रम करता है। पाश्चात्य धार्मिक-व्यवस्था कदाचित तर्कवाद, वैज्ञानिक बोध, नास्तिकता आदि से ग्रसित धार्मिक व्यवस्था हैं। प्राच्य सांस्कृतिक व्यवस्था के अंतर्गत अमूर्त और चेतन सत्ता की श्रेष्ठता की अनेक अवधारणाएं प्राप्त होती है। समनानंतर, पाश्चात्य संस्कृति के अंतर्गत कर्म के और कर्म की शुद्धता के अतिरिक्त धार्मिक-संस्कृति और धार्मिक व्यवस्था के संदर्भ में पुनरोदय, न्याय दिवस, आत्मा के संशोधन आदि से सम्बंधित अवधारणाएं भी प्राप्त होती हैं।

दार्शनिक प्रतिमान के सन्दर्भ में, प्राच्य दार्शनिक प्रतिमान विशिष्ट-वैविध्य से युक्त है। भारतीय दर्शन-व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक सम्प्रदायों द्वारा मोक्ष को प्रथम और अंतिम लक्ष्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। अतः भारतीय दर्शन का स्वरूप मूलतः अध्यात्मवादी है। भारतीय दर्शन-परंपरा से संबंधित प्रत्येक संप्रदाय अपनी वैचारिकी के अंतर्गत मोक्ष के लक्ष्य को सर्वाधिक महत्वपूर्ण और सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है। मोक्ष की ही तरह भारतीय दर्शन-व्यवस्था के अंतर्गत प्रमाण-शास्त्र की भी विशिष्ट अवधारणा प्राप्त होती है।

प्रमाण-व्यवस्था यद्यपि भारतीय दर्शन के प्रत्येक संप्रदाय का महत्वपूर्ण अंग है तथापि इसमें संप्रदायों के सापेक्ष मात्रात्मक और गुणात्मक अंतर स्वयंसिद्ध है। भारतीय दर्शन-व्यवस्था प्रमाण को यथार्थ-ज्ञान की प्राप्ति के एकमात्र साधन मानती हैं। भारतीय दर्शन-परम्परा सृष्टि की उत्पत्ति पर भी अपना प्रकट करती है। भारतीय दर्शन के अंतर्गत संप्रदायों की भिन्नता के कारण सृष्टि-उत्पत्ति विषयक मतों में वैविध्य की प्राप्ति स्वाभाविक ही है। संप्रदायों की दर्शन पद्धति के आधार पर भारतीय दार्शनिक-परंपरा तत्त्वज्ञान की पृथक-पृथक किंतु विशेष व्याख्या प्रस्तुत करती है। ईश्वर और ईश्वरीय सत्ता के विषय में भारतीय दार्शनिक संप्रदायों के अन्तर्गत आस्तिक-नास्तिक दोनों विचारधारा विद्यमान हैं। भारतीय दर्शन-व्यवस्था में अंतर्निहित दार्शनिक संप्रदायों का उपर्युक्त समस्त वैविध्य और वैशिष्ट्य भारतीय दर्शन के विशिष्ट अध्यात्मवादी-तात्त्विक स्वरूप का निर्माण करता है। समानांतर, पाश्चात्य दार्शनिक प्रतिमान का प्रारंभ थेलीज नामक दार्शनिक से होता है। थेलिज से प्रारंभ हुये पश्चिमी दर्शन की प्रारंभिक कालावधि के अंतर्गत सोफिस्ट शिक्षकों तक भौतिकतावाद का स्प्ष्ट आग्रह गोचर होता है। पाश्चात्य दर्शन के बृहद वितान के अंतर्गत सुकरात के आगमन के साथ दर्शन भौतिकतावाद को त्याग कर अध्यात्मवाद की ओर अग्रसर होता है। इसी क्रम में प्लेटो पाश्चात्य दर्शन को अध्यात्म के उच्चतम शिखर पर स्थापित करता है। पाश्चात्य दर्शन को अध्यात्म की इन ऊँचाइयों से यथार्थ के धरातल पर पुर्नस्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य उसका शिष्य अरस्तू करता है। अरस्तू दर्शन को जग-सापेक्ष बनाता है। सुकरात प्लेटो अरस्तू से होता हुआ पाश्चात्य दर्शन मध्यकाल की दुर्धर्ष स्थितियों में प्रवेश करता है जहाँ धार्मिक दार्शनिकों द्वारा इसका उपयोग ईश्वरीय सत्ता और धर्म के प्रति आस्था के उद्भावक अस्त्र के रूप में किया जाता है। समय सापेक्ष विज्ञान-बोध का अनुसरण करते हुए दर्शन धर्म की बेड़ियों से मुक्त होकर वैज्ञानिकता और बौद्धिकता का चयन करता है। इस काल के अंतर्गत दर्शन की अनुभववादी और बुद्धिवादी दो समानांतर धाराएँ दृष्टिगोचर होती हैं। अनुभववादी दार्शनिक इंद्रियगम्य लौकिक-सत्ता के अस्तित्व की सत्यता को परम-सत्ता के अस्तित्व के समानांतर स्वीकृ ति प्रदान करते हैं जबकि बुद्धिवादी दार्शनिक इंद्रियगम्य लौकिक-सत्ता का खंडन करते हुए इंद्रियातीत परम-सत्ता के अस्तित्व को एकमात्र-सत्ता के रूप में मान्यता प्रदान करने के आग्रही

हैं। जॉन लॉक, डेविड ह्यूम, इमैनुअल कांट, स्पिनोजा, फ्रेडरिक हीगल आदि इस युग और धारा के मुख्य दार्शनिक है। आधुनिक युग के पश्चात पश्चिमी दर्शन के पृष्ठ पर समकाल का उदय होता है। समकालीन दर्शन की प्रारंभिक कालावधि अनेक दुराग्रहों और विडंबनाओं से ग्रसित थी। इस युग की सबसे महत्तम विडंबना हीगल जैसे महानतम दार्शनिक की 'आलोचना मात्र' के लिए आलोचना होना है। इसी क्रम में, पाश्चात्य दार्शनिक चिंतन की समकालीन धारा के अंतर्गत कार्ल मार्क्स, क्रिकेगार्द, सार्त्र, माइकल एजेंल्स आदि प्रमुख दार्शनिक प्राप्त होते हैं। दर्शन का समकाल जॉन लॉक से लेकर अद्यतन निरन्तर विकासमान है। समकालीन दर्शन के अंतर्गत अद्यतन स्वतंत्रता, समानता, अधिकार, कानून, न्याय, संपत्ति और उससे संबंधित अधिकार, आधुनिकतावाद, उत्तर आधुनिकतावाद, अस्तित्ववाद तथा उत्तर शास्त्रीयतावाद आदि महत्वपूर्ण अवधारणा प्रचलित और प्रसरित है। उपर्युक्त समस्त मत-मान्यतायें और उनसे सम्बद्ध दार्शनिकों और चिंतकों का समेकित दार्शनिक वितान के बृहद और समावेशी स्वरूप को द्योतित करता है।

साहित्यिक सांस्कृतिक प्रतिमान के संदर्भ में, प्राच्य अर्थात भारतीय संस्कृति के साहित्यिक स्वरूप के अंतर्गत परा-तत्त्वचिन्तन सम्बन्धी शास्त्रीय ग्रंथों की आदिव्याप्ति स्वयंसिद्ध है। भारतीय संस्कृति का साहित्यिक स्वरूप मनुष्य के पूर्ण विकास अर्थात भौतिक और अभौतिक विकास के समन्वित स्वरूप को लक्षित करता है। प्राच्य अर्थात भारतीय साहित्यक संरचना के अंतर्गत प्राप्य प्रत्येक आत्माकर और वृद्धकाय ग्रंथों का एकमात्र लक्ष्य मनुष्य में मनुष्यता-भाव की स्थापना है। भारतीय साहित्यिक ग्रंथों की विषय वस्तु के अंतर्गत धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, लोक-परलोक ईश्वर तथा विज्ञान का मर्यादित और विशिष्ट स्वरूप गोचर होता है। काल की दृष्टि से भी प्राच्य संस्कृति का साहित्यिक स्वरूप प्राचीन काल से लेकर अद्यतन अनेक महनीय ग्रन्थों, कृतियों और विचारों से ओतप्रोत है। कहना न होगा, प्राच्य अर्थात भारतीय साहित्यिक स्वरूप आदर्श और शुभ के अनुसंधान के क्रम में सत्यं, शिवं, सुन्दरम के भाव का विशेष आग्रही है। पाश्चात्य संस्कृति बुद्धि और विज्ञान पर आद्धृत मनुष्य के भौतिक विकास को अधिक महत्व प्रदान करती है अतः पाश्चात्य संस्कृति के साहित्यक स्वरूप के अंतर्गत बुद्धि और तर्क प्रधान तत्त्व चिन्तन सम्बन्धी ग्रन्थों की आदि व्याप्ति निर्विवाद है। इन ग्रन्थों का एकमात्र लक्ष्य बुद्धि की स्थापना

द्वारा तत्त्व का सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करना है। इसी क्रम में प्रत्येक ग्रंथ विशिष्ट विषय-वस्तु का संवहन करते हैं। इन ग्रंथों का अन्य लक्ष्य संबंधित विषयवस्तु के ज्ञान और वैशिष्ट्य में महत्तम अभिवृद्धि भी है। तथ्य स्वयंसिद्ध है, पाश्चात्य साहित्यक स्वरूप यथार्थ के अनुसंधान का उपक्रम है। पाश्चात्य संस्कृति बुद्धि और विज्ञान पर आद्धृत मनुष्य के भौतिक विकास को अधिक महत्व प्रदान करती है अतः पाश्चात्य संस्कृति के साहित्यक स्वरूप के अंतर्गत बुद्धि और तर्क प्रधान तत्त्व चिन्तन सम्बन्धी ग्रन्थों की आदिव्याप्ति निर्विवाद है। इन ग्रन्थों का एकमात्र लक्ष्य बुद्धि की स्थापना द्वारा तत्त्व का सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करना है। इसी क्रम में प्रत्येक ग्रंथ विशिष्ट विषय-वस्तु का संवहन करते हैं। इन ग्रंथों का अन्य लक्ष्य संबंधित विषयवस्तु के ज्ञान और वैशिष्ट्य में महत्तम अभिवृद्धि भी है। तथ्य स्वयंसिद्ध है, पाश्चात्य साहित्यक स्वरूप यथार्थ के अनुसंधान का उपक्रम है।

सामाजिक प्रतिमान के संदर्भ में, प्राच्य संस्कृति के सामाजिक स्वरूप के अंतर्गत संयुक्त परिवार व्यवस्था, उत्कृष्ट दांपत्य व्यवस्था, विशिष्ट विवाह-व्यवस्था, वात्सल्य-भाव, कर्तव्यबोध, नारी का विशिष्ट महत्व और स्थान, यौन-नैतिकता माता-पिता और बड़ों के प्रति आदर भाव आदि भारतीय सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्था के महत्वपूर्ण तत्त्व हैं। कहना न होगा, भारतीय सामाजिक व्यवस्था आध्यात्म, नैतिकता, वैयक्तिक और पारिवारिक प्रेम, सामाजिक सद्भाव, संतुष्टि, परोपकार लोक-कल्याण, विश्व बंधुत्व के भाव के आधार पर निर्मित व्यवस्था है तथा उपर्युक्त तत्त्व और भाव की व्याप्ति के परिणामस्वरूप भारतीय सामाजिक स्वरूप के अंतर्गत परोपकार, दया, करुणा, समानता, स्वतंत्रता, कर्तव्य, अधिकार, न्याय के शुभ की निष्पत्ति सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक संदर्भ में होती है। समानान्तर, पाश्चात्य सामाजिक संरचना के अन्तर्गत बुद्धि और भौतिकतावाद का प्राबल्य गोचर होता है। भौतिकता और बुद्धि-विषयक यही आग्रह पाश्चात्य सामाजिक संरचना के स्वरूप की निर्मिती का हेतु भी है। पाश्चात्य सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत पारिवारिक विच्छेद, पूँजी विषयक अतिवाद, उच्छृंखल प्रेम और काम संबंध, भोगवादी जीवनचर्या, वैयक्तिकता का दुराग्रह सहज गोचर होता है। इन्हीं मत-मान्यताओं और सिद्धांतों के कारण पाश्चात्य सामाजिक स्वरूप के अंतर्गत अनैतिक काम संबंध, विवाह पूर्व और विवाहेत्तर काम तथा प्रेम संबंध, समलैंगिक संबंध, दुर्धर्ष जीवन संघर्ष,

उपयोगितावाद, सुखवाद, एकल परिवार व्यवस्था, वृद्धाश्रम-व्यवस्था, एकाकीपन, अति यांत्रिकता, स्वतंत्रता-समानता का अतिवादी विचार, पूँजी का अधिकाधिक संकेन्द्रण, धर्म-निरपेक्षता तथा मूलभूत अधिकारों का अतिवाद निःसृत होता है

आर्थिक प्रतिमान के संदर्भ में, तथ्य सद्यः गोचर है कि प्राचीन भारतीय अर्थ दर्शन से सम्बद्ध अधिकांश प्राचीन दार्शनिक और आधुनिक अर्थवेत्ता 'कर' के संग्रहण को राज्य और राजा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिकार के रूप में परिभाषित और प्रतिपादित करते हैं। भारतीय अर्थ चिंतन के अंतर्गत प्राप्य औचित्यपूर्ण कर संग्रहण तथा लोकहित में उसके उपयोग और उपभोग का भाव भारतीय राजव्यवस्था के लोक कल्याणकारी स्वरूप तथा वित्त व्यवस्था के समाजवादी स्वरूप को परिभाषित और प्रस्तुत करता है। समाजवाद और लोक कल्याण का यही भाव आधुनिक भारतीय आर्थिक व्यवस्था के स्वरूप की निर्मिति और नियमन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है। अर्थ संबंधी उपरोक्त समस्त भाव भारतीय अर्थव्यवस्था के अंतर्गत अर्थ के धर्मोचित और श्रमोचित संग्रह तथा मर्यादित और धर्मसम्मत उपभोग और उपयोग का विवरण प्रस्तुत करते समानान्तर, प्राचीन काल से लेकर अधुनातन पाश्चात्य अर्थव्यवस्था संबंधी विचार अधिकांशतः वैयक्तिक संपत्ति के अधिकार को मान्यता प्रदान करता है परिणामस्वरूप यही वैयक्तिक अर्थाधिकार पाश्चात्य संस्कृति के अंतर्गत समय-सपेक्ष वर्ग विभाजन की घटना को उत्तेजित करता है। कहना न होगा, इसी वर्ग विभाजन की घटना के परिणामस्वरूप पश्चिमी सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था के अंतर्गत पूँजीवाद का उद्‌भव और विकास दृष्टिगोचर होता है। इस पूँजीवादी व्यवस्था के ही कारण औद्योगिकरण, नगरीकरण, विनिवेशीकरण, उपभोक्तावादी तथा भौतिकतावादी जीवन पद्धति का अतिवादी स्वरूप गोचर होता है। खुली हुई अर्थव्यवस्था इस समाज के ढाँचे की मूलभूत आर्थिक विशेषता है। अर्थ से संबंधित इन्हीं मत-मान्यताओं का समेकित स्वरूप पाश्चात्य संस्कृति के आर्थिक स्वरूप का निर्धारण, नियमन और प्रतिपादन करता है। पाश्चात्य आर्थिक व्यवस्था के विश्लेषण के परिणामस्वरूप तथ्य स्वयंसिद्ध है कि प्राचीन काल से लेकर अधुनातन पाश्चात्य अर्थव्यवस्था संबंधी समस्त विचारक अधिकांशतः वैयक्तिक संपत्ति के अधिकार को मान्यता प्रदान करते है परिणामस्वरूप यही वैयक्तिक अर्थाधिकार पाश्चात्य संस्कृति के अंतर्गत समय-सापेक्ष वर्ग विभाजन की घटना को उत्तेजित

करता है। कहना न होगा, इसी वर्ग विभाजन की घटना के परिणामस्वरूप पश्चिमी सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था के अंतर्गत पूँजीवाद का उद्‌भव और विकास दृष्टिगोचर होता है। इस पूँजीवादी व्यवस्था के ही कारण औद्योगिकरण, नगरीकरण, विनिवेशीकरण, उपभोक्तावादी तथा भौतिकतावादी जीवन पद्धति का अतिवादी निर्मित हुआ है। खुली हुई अर्थव्यवस्था पाश्चात्य-सामाजिक ढाँचे की मूलभूत विशेषता है। अर्थ से संबंधित इन्ही मत-मान्यताओं का समेकित स्वरूप, पाश्चात्य संस्कृति के आर्थिक स्वरूप का निर्धारण, नियमन और प्रतिपादन करता है।

प्रस्तुत शोध कार्य का उद्देश्य 21वीं सदी के उपन्यासों में प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति के द्वंद्व का अध्ययन, विश्लेषण और मूल्यांकन है। 'प्राच्य' शब्द का सामान्य अर्थ प्राचीन है। 'प्राचीन' उस भूमि को कहते हैं जिसे सूर्य सर्वप्रथम अपनी किरणों से सिंचित करता है फलतः प्राच्य पद, पूर्व दिशा का अर्थ बोधक है। शब्दकल्पद्रुम के अनुसार प्राच्य अर्थात **प्राची भवः** अर्थात जो पूर्व दिशा में स्थित हो। शोध-प्रबंध के अंतर्गत प्राच्य संस्कृति से हमारा अभिप्रेत 'भारतीय संस्कृति' से है। कहना न होगा, प्राच्य शब्द मीमांसा के अंतर्गत प्राच्य शब्द के 'पूर्व' अर्थ से जहाँ एक ओर भारत का संकेत होता ही है तो वहीं दूसरी ओर भारत में संस्कृतियों के विभाजन की परंपरा में प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति के रूप में भारतीय और पश्चिमी संस्कृ ति के विभाजन का विधान प्राप्त होता है अतः शोध प्रबंध में जहाँ-जहाँ भी 'प्राच्य संस्कृति' शब्द का प्रयोग हुआ है, वहाँ-वहाँ शोधकर्ता का आशय भारतीय संस्कृति से है। शोध प्रबंध के अंतर्गत प्राच्य संस्कृति के लिए 'भारतीय संस्कृति' पद का आधिकारिक प्रयोग स्वयंसिद्ध है। समानांतर, पाश्चात्य शब्द मीमांशा के क्रम में प्राप्त 'पश्चिम में अवस्थित देश' अर्थ से वैश्विक मानचित्र पर पश्चिम में अवस्थित यूरोप का बोध होता है अतः पाश्चात्य संस्कृति पद के अर्थ और भाव का सम्बन्ध यूरोपीय संस्कृति से है। अतः संपूर्ण शोध प्रबन्ध के अंतर्गत पाश्चात्य संस्कृति के संदर्भ में यूरोपीय संस्कृति, यूरो-अमेरिकी संस्कृति, पश्चिमी संस्कृति आधुनिकतावादी संस्कृति आदि पदों का समानांतर आधिकारिक प्रयोग किया जायेगा।

किसी भी समाज को समझने के लिए सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज वहाँ का साहित्य होता है। आचार्य शुक्ल ने भी कहा है, 'प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का

संचित प्रतिबिम्ब होता है। इस प्रतिबिम्ब की अभिव्यक्ति समाज और साहित्य के अंर्तसम्बंधों का ही एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। साहित्य देशकाल, परिस्थिति को आम-जन के मस्तिष्क में उकेरता है। समाज में घटित होने वाली प्रत्येक क्रिया-प्रतिक्रिया का प्रतिबिम्ब साहित्य पर गहरा प्रभाव डालता है। समकालीन साहित्य के अन्तर्गत समाज के मूल्यों, वास्तविकताओं तथा मिथकों का एक विशिष्ट सीमा के भीतर चित्रण 21वीं सदी के उपन्यासों में प्राप्त होता है। समकालीन कथा-साहित्य में शैली, विषयवस्तु उपादेयता तथा प्रासंगिकता की दृष्टि से 21वीं सदी के उपन्यासों में एक नवीन तथा सुखद विविधता देखी जा सकती है। वैश्वीकरण तथा अन्य कारणों से परिवर्तित हो रहे समाज का चित्रण इन उपन्यासों की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

21वीं सदी के अन्तर्गत उपन्यासों का फलक जहाँ एक ओर विस्तृत होने के साथ-साथ रुढ़ियों, आडम्बरों तथा आदर्शवाद से छुटकारा पाते हुए यथार्थवाद की ओर बढ़ता है तो वहीं दूसरी तरफ मानव-जीवन में वैयक्तिक, समाजिक, पारिवारिक, धार्मिक तथा आर्थिक परम्पराओं, मूल्यों तथा आदर्शों को प्रश्रय देने वाले उपन्यासों को भी समकालीन उपन्यासों के फलक पर केन्द्रीय स्थान प्राप्त हुआ। मानवीय मूल्यों के साथ-साथ आधुनिकता के महत्त्वपूर्ण अवयवों की उपस्थिति के परिणामस्वरूप 21वीं सदी के उपन्यासो में कथ्य, विषयवस्तु, शैली, भाषा तथा के स्तर पर एक विशिष्ट द्वंद्व देखने को मिलता है। इस द्वंद्व को हम आदर्शवाद तथा यथार्थवाद का द्वंद्व, पररम्परा तथा आधुनिकता का द्वन्द्व अथवा 'प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों का द्वंद्व' आदि नामों से संबोधित कर सकते हैं।

समकालीन उपन्यासों में प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों के मध्य इस द्वंद्व को हम 19वीं सदी के छठ्वें दशक अर्थात् समकालीन उपन्यासों के प्रारंभिक काल से ही चिन्हित कर सकते हैं। मोहन राकेश का उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे में', डॉ० देवराज का उपन्यास 'अजय की डायरी', मन्नू भण्डारी और राजेन्द्र यादव के सहलेखन से उत्पन्न उपन्यास 'एक इंच मुस्कान', निर्मल वर्मा का उपन्यास 'वे दिन', गुलशेर खाँ 'शानी' का उपन्यास 'कालाजल', शिवप्रसाद सिंह का उपन्यास 'नीला चाँद', राही मासूम रजा का उपन्यास 'आधा गाँव', नरेश मेहता का उपन्यास 'यह पथ बन्धु था', कृष्णा सोबती का उपन्यास 'मित्रों मरजानी', मृदुला गर्ग का उपन्यास 'चित्तकोबरा' तथा 'कठगुलाब', राजी सेठ का उपन्यास 'तत्सम', चित्रा मुद्गल का

उपन्यास 'आँवा', प्रभा खेतान का उपन्यास 'छिन्नमस्ता' आदि इस द्वन्द्व के महत्वपूर्ण साक्षी रहे हैं। प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों के मध्य यह द्वंद्व तब से लेकर अब तक के अधिकांश उपन्यासों में निर्विवाद सम्पन्न होता रहा है। यद्यपि इस द्वंद्व की सदैव एक विशिष्ट सार्थकता थी तथापि 20वीं सदी के सामाजिक जनजीवन पर इस द्वंद्व का प्रभाव अल्पगोचर होता है, क्योंकि समाज परिवर्तन की उस अवस्था से नहीं गुजरा जिस संक्रमण की अवस्था से 21वीं सदी का समाज गुजर रहा है। ग्लोब्लाइजेसन के कारण प्रभावित और परिवर्तित हो रहे समाज पर इस द्वंद्व का सर्वाधिक तथा उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा इसलिए 21वीं सदी के उपन्यासों में यह द्वंद्व एक नवीन कलेवर और विशिष्ट महत्व के साथ खुद को प्रस्तुत करता है।

21वीं सदी के अंतर्गत भूमंडलीकरण और सूचना संचार क्रांति के परिणामस्वरुप आधुनिक मानव के जीवन बोध और अनुभवों के बेतरतीब उलझाव और विभिन्न शेड्स को ग्रहण करने हेतु 21वीं शताब्दी का औपन्यासिक वितान जहाँ एक और विस्तृत होते हुए आधुनिक भावबोध और यथार्थ को अपनी वैचारिकता के अंतर्गत प्रश्रय देता है तो वहीं आदर्श और परंपरा के स्वर्णिम सूत्र भी औपन्यासिक सृष्टि के अंतर्गत समनानंतर सद्यः गोचर होते हैं। 21वीं सदी के उपन्यासों के अंतर्गत स्त्री विमर्श, वृद्ध-विमर्श, सांस्कृतिक-विमर्श, सामाजिक-विमर्श, आर्थिक-विमर्श आदि आधुनिक मानव-जीवन से सम्बद्ध विमर्शों को उपन्यासकार अपनी विषय वस्तु और कथावस्तु के रूप में स्वीकारते हैं। इसी क्रम में, कमल कुमार का पत्रात्मक शैली में लिखित आत्मकथात्मक उपन्यास, पासवर्ड-नारी विमर्श, हृदयेश का उपन्यास चार दरवेश-वृद्ध और आधुनिकता-विमर्श, गीतांजलि श्री के उपन्यास तिरोहित मनोविश्लेषणात्मक स्त्री-समलैंगिकता विमर्श, संजीव का उपन्यास सूत्रधार जीवनीपरक-दलित विमर्श, रणेन्द्र का उपन्यास ग्लोबल गाँव के देवता आदिवासी विमर्श, अनीता राकेश का उपन्यास गुरुकुल- समलैंगिक विमर्श, मधु काँकरिया का उपन्यास-सेज पर संस्कृत धार्मिक विमर्श तथा सही नाप के जूते आधुनिकता-विमर्श आदि उपर्लिखित महत्वपूर्ण विमर्शों पर आधारित उपन्यास है। समानांतर, उपन्यासों में पर्यावरण विमर्श, बाल-विमर्श, दलित विमर्श आदि विमर्श भी आंशिक रूप में प्राप्त होता है। उपर्युक्त उपन्यासों के विवेचन-विश्लेषण के क्रम में तथ्य स्वयंसिद्ध है कि उपर्युक्त उपन्यासों के अंतर्गत विमर्श विशेष की प्रधानता होने के बावजूद

भूमंडलीकरण, औद्योगीकरण, पूँजीवाद, भौतिकतावाद, सूचना संचार क्रांति आदि के दुष्प्रभाव से उद्भूत पाश्चात्य जीवन-पद्धति का असन्तुलित और अतिवादी स्वरूप कारण, परिणाम और अंग के रूप में उपन्यास के घटना, प्रसंग, कथाओं-उकथाओं के अंतर्गत प्राप्त होता है।

21वीं सदी के उपन्यासों के अंतर्गत प्राच्य और पाश्चात्य सांस्कृतिक-वैशिष्टय अर्थात गुणधर्म को धारण करने वाले पात्रों का समान अस्तित्व गोचर होता है। शोधगृहीत उपन्यासों के अंतर्गत काशीनाथ सिंह के उपन्यास रेहन पर रग्घू के कथानायक रघुनाथ और सोनल, चित्रा मुद्गल के उपन्यास गिलिगडु के बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी, संजीव के उपन्यास सूत्रधार का कथा नायक भिखारी ठाकुर, अलका सरावगी के उपन्यास जानकीदास तेजपाल मैनशन का नायक जयगोविंद और दीपा, लता शर्मा के उपन्यास सही नाप के जूते का पात्र रजनीकांत, कमल कुमार के उपन्यास पासवर्ड की कथा नायिका, हृदयेश के उपन्यास चार दरवेश के चारो वृद्ध नायक चिंताहरण, दिलीपचंद्र, शिवशंकर और रामप्रसाद आदि 21वीं सदी के उपन्यासों के अंतर्गत प्राच्य संस्कृति और उसके तत्त्वों को धारण करने वाले उदाहरण-पात्र हैं। उपर्युक्त उदाहरण पात्रों के व्यक्तित्व, चरित्र, चिंतन और कर्तृत्व के अंतर्गत भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था के परमार्थ, आदर्श, सात्विकता, ग्राम्यता, आस्तिकता, आस्था, धार्मिक-विश्वास, लोक और आंचलिक संस्कृति से जुड़ाव, भाग्यवाद और प्रारब्धवाद की स्वीकार्यता, उत्कृष्ट और आदर्श दाम्पत्य, दाम्पत्य और वैवाहिक संबंध की सहजता, यौन-शुचिता, वात्सल्य-भाव आदि भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था के औदात्य गुण गोचर होते हैं। समनानंतर, काशीनाथ सिंह के उपन्यास रेहन पर रग्घू के पात्र सरला, संजय, धनंजय, चित्रा मुद्गल के उपन्यास गिलिगडु के अंतर्गत कथानायक बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी के बहुओं और बेटों, लता शर्मा के उपन्यास सही नाप के जूते के अंतर्गत चिन्मय, कल्याणी, कथा नायिका उर्वशी, कमल कुमार के उपन्यास पासवर्ड के अंतर्गत कथा नायिका का प्रेमी डॉ. आशीष आदि के चरित्र के अंतर्गत पाश्चात्य सामाजिक- सांस्कृतिक व्यवस्था के अतिवादी और भौतिकतावादी लक्षणों की प्रभाविता को जीवन, आचार, व्यवहार और विचार के अंतर्गत धारण करते हैं। इन पात्रों के व्यक्तित्व और चरित्र के अंतर्गत कर्म का अतिवाद, भौतिकवाद, उपभोक्तावाद, पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति समर्थन भाव, अधिकार बोध, वैयक्तिक, सामाजिक और

यौन उच्छृंखलता, एकल परिवार व्यवस्था और वर्तमान भविष्य के प्रति अतिवादी आग्रह गोचर होता है। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियों के उपर्युक्त परस्पर व्यतिरेकी गुणधर्मों को अपने जीवन, कर्म और चरित्र के अंतर्गत धारण करने वाले उपर्युक्त पात्रों के मध्य आचार, व्यवहार, विचार, व्यापार और कर्म के अंतर्गत प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति का दुर्धर्ष संघर्ष गोचर होता है। उपर्युक्त संघर्ष के क्रम में कहीं प्राच्य संस्कृति अधिक प्रभावी दिखाई देती है तो कहीं पाश्चात्य संस्कृति किंतु वर्तमान युग और कालखण्ड के सन्दर्भ में विजय अंततः पाश्चात्य सांस्कृतिक चेतना और भावबोध की ही होती है। उपर्युक्त कोटि के पात्रों के अतिरिक्त 21वीं सदी के शोधगृहीत उपन्यासों के अंतर्गत ऐसे पात्रों का भी बाहुल्य प्राप्य है जो संक्रमित जीवन, व्यक्तित्व और वैचारिकी से युक्त हैं। उपर्युक्त कोटि के पात्रों के जीवन, आचार-व्यवहार और कर्म के अंतर्गत प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियों की प्रभाविता समानांतर गोचर होती है। ऐसे पात्र उपन्यास के घटना और प्रसंग विशेष के अंतर्गत वातावरण और परिस्थिति सापेक्ष उपर्युक्त संस्कृतियों के विशिष्ट मूल्य और भावबोध का प्रदर्शन अपने जीवन, विचार और कर्म के अंतर्गत करते हुए गोचर होते हैं। 21वीं सदी के उपन्यासों के अंतर्गत उपर्युक्त कोटि के पात्रों में प्राच्य और पाश्चात्य सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था के मत, मूल्य, मान्यताओं, आचार, विचार और व्यवहार के आग्रह के कारण प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों और संक्रियाओं के मध्य का द्वन्द्व 21वीं सदी के उपन्यासों के अंतर्गत प्रस्तुत होता है। उपर्युक्त तृतीय कोटि के पात्रों अर्थात संक्रमित पात्रों के चरित्र की इस संक्रमित नियति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण आधुनिक भाव-बोध है। कहना न होगा, उपर्युक्त आधुनिक भाव-बोध पाश्चात्य सांस्कृतिक संरचना और वैचारिकी की प्रभुता और प्रभविता का द्योतक है।

प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति के उपर्युक्त प्रतिनिधि पात्रों के अतिरिक्त 21 वीं सदी के कुछ उपन्यास भी ऐसे प्राप्त होते हैं जो प्राच्य अथवा पाश्चात्य संस्कृति की विशिष्ट प्रकृति और पृवृत्ति को लक्षित करते हैं। उपर्युक्त कोटि के उपन्यासों में संजीव का उपन्यास 'सूत्रधार', अलका सरावगी का उपन्यास 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' और चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'गिलिगडु' भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था के सात्विक और मर्यादित गुणों को प्रकट करता है। तो वहीं हृदयेश का उपन्यास 'चार दरवेश', लता शर्मा का उपन्यास 'सही नाप

के जूते', काशीनाथ सिंह का उपन्यास 'रेहन पर रग्घू', अनीता राकेश का उपन्यास 'गुरुकुल : एक अधूरी कहानी' आदि पाश्चात्य सामाजिक-सांस्कृतिक बोध को आधुनिक भावबोध और यथार्थ के रूप में भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना के अंतर्गत लक्षित करता है। उपर्युक्त पात्रों और पात्र कोटियों के अतिरिक्त 21वीं सदी के उपन्यासों की कथावस्तु और घटनाओं के अंतर्गत भी संस्कृति विशेष की वैचारिक निष्पत्ति और संक्रमण को स्पष्ट देखा जा सकता है। अलका सरावगी का उपन्यास 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' जहाँ एक ओर प्राच्य सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था और चिंतन के संदर्भ का प्रतिनिधित्व करता है तो वही पाश्चात्य सामाजिक सांस्कृतिक भावबोध और आग्रह भी उपन्यास के अंतर्गत सहज प्राप्य है। 21वीं शताब्दी के उपन्यासों के अंतर्गत उपर्युक्त द्वंद्व की क्रिया वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक प्रतिमानों के अंतर्गत दृष्टिगोचर होती है। वैयक्तिक प्रतिमानों के अंतर्गत वैयक्तिक स्तर पर दोनों संस्कृतियों के मध्य प्रारब्ध और कर्म, अतीत गौरव तथा वर्तमान-भविष्य, मर्यादा तथा सुचितापूर्ण जीवन-पद्धति, आदर्श तथा यथार्थवादी चिंतन दृष्टि आदि व्यतिरेकी वैचारिकी की व्याप्ति ही संस्कृतिगत उपर्युक्त वैयक्तिक द्वंद्व को को जन्म देती है। समानांतर पारिवारिक प्रतिमान के अंतर्गत एकल परिवार व्यवस्था और संयुक्त परिवार व्यवस्था, वैवाहिक संबंध और विवाहेत्तर संबंध, दाम्पत्य और लिब इन की अवधारणा तथा वात्सल्य और कृत्रिमतापूर्ण चिंतन-विचार और कर्म पद्धति प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों के मध्य पारिवारिक द्वंद्व का हेतु हैं। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति के सामाजिक प्रतिमान के अंतर्गत ग्रामीण व्यवस्था और नगरीय व्यवस्था, अधिकार और कर्तव्य, सात्विकता और मर्यादित जीवन संघर्ष, यौन-नैतिकता और यौन उच्छृंखलता आदि वैचारिक और सभ्यतागत मान्यताओं और परंपराओं के परिणामस्वरुप प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों के अंतर्गत सामाजिक द्वंद्व की क्रिया सिद्ध होती है। समानांतर, प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों के आर्थिक प्रतिमान के अंतर्गत व्याप्त परमार्थ तथा उपभोक्तावाद, मूल्ययुक्त अर्थ तंत्र तथा मूल्यविहीन अर्थतंत्र, लोक केंद्रित अर्थतंत्र और पूंजीवादी अर्थतंत्र, सीमित अर्थकांक्षा तथा अर्थलिप्सा आदि अवधारणाओं, मान्यताओं, कर्म और विचारों के आधार पर प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति के मध्य आर्थिक आर्थिक द्वंद्व का प्रस्फुटन होता है। प्राच्य तथा पाश्चात्य धार्मिक प्रतिमानों के अंतर्गत प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों के

मध्य व्याप्त पारलौकिकता और इहलौकिकता, अध्यात्म और भौतिकतावाद, आस्तिकता और वैज्ञानिक बोध, आस्था और तर्क संबंधी परस्पर व्यतिरेकी कर्म और विचार सम्बन्धी अवधारणाओं और चिंतन पद्धतियों के अंतर्गत 21 में सदी के उपन्यासों में प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों के धार्मिक द्वंद्व की निष्पत्ति होती है।

21वीं शताब्दी के अंतर्गत सूचना-संचार क्रांति के परिणामस्वरूप सांस्कृतिक संक्रमण की दुर्धर्ष परिस्थितियों ने न केवल उपन्यासों के अन्तर्गत मूल्यगत और संस्कृतिगत द्वंद्व को जन्म दिया अपितु इस द्वंद्व और यथार्थ के प्रकटीकरण हेतु इस शताब्दी के उपन्यासों में शिल्पगत और भाषिक परिवर्तनों की आवश्यकता को भी प्रेरित किया। परिणामस्वरुप 21वीं शताब्दी के उपन्यासों के अंतर्गत शिल्पगत और भाषागत नवप्रयोग सिद्ध हुए। 21वीं शताब्दी के अंतर्गत सूचना-संचार क्रांति और जीवन पद्धतियों के परस्पर सम्मिलन तथा प्राच्य और पाश्चात्य साहित्यिक मत-मान्यताओं के परस्पर आदान-प्रदान के क्रम में निःसन्देह दोनों साहित्यिक संस्कृ तियों के अन्तर्गत संक्रमण की आवश्यम्भावी क्रिया-प्रतिक्रिया घटित हुई। कहना न होगा, 21वीं सदी के उपन्यासों में शैल्पिक परिवर्तनों का एक अत्यंत महत्वपूर्ण कारण उपर्युक्त संक्रमण की घटना भी है। पाश्चात्य सांस्कृतिक और साहित्यिक विमर्शों के प्रभाव स्वरूप ही 21वीं सदी के उपन्यासों में कथावस्तु, विषयवस्तु और पात्रों की प्रधानता उपन्यास के कथा-कथन के क्रम में गोचर होती है। कथाकथन के स्तर पर पात्रों की उपर्युक्त प्रधानता निःसंदेह जैक देरिदा के लेखक की मृत्यु की अवधारणा को पुष्ट करता है। समानान्तर, 21वीं शताब्दी के उपन्यासों के अंतर्गत विभिन्न विमर्शों यथा-मनोविश्लेषणवादी, यथार्थवादी, अति-यथार्थवादी, अस्तित्ववादी, स्त्री-विमर्श आधुनिकता विमर्श, समलैंगिक विमर्श, पर्यावरण विमर्श आदि प्रासंगिक विमर्शों की अन्तर्व्याप्ति 21वीं शताब्दी के अंतर्गत पाश्चात्य साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रभाविता की द्योतक है। इस शताब्दी के उपन्यासों के अंतर्गत भाषा के स्तर पर भारतीय भाषाओं के समानांतर अन्य विदेशी भाषाओं का प्रयोग, पात्रों के अंतर्गत प्रगतिशील, वैचारिक और सांस्कृतिक रूप से अभिजात्यवर्गीय पात्रों की अधिकाधिक रचना और प्रयोग, विषयवस्तु के स्तर पर वैश्विक मुद्दों, विमर्शों, समस्याओं का उपन्यास की विषयवस्तु के अंतर्गत समाहार तथा कथा-कथन के क्रम में विदेशी विद्वानों, कवियों, महनीय व्यक्तित्वों के कथनों, उद्धरणों, कविताओं आदि का यथावत

प्रयोग, पात्र-योजना और चरित्र-चित्रण के स्तर पर अभिजात्यवर्गीय, नगरीय, प्रगतिशील, विज्ञान और तार्किक बोध से युक्त पात्रों की आधिकारिक रचना और प्रयोग, देश-काल के स्तर पर वैश्विकता का आग्रह और आवाहन 21वीं शताब्दी के अंतर्गत पाश्चात्य साहित्यिक-सांस्कृतिक प्रभावों को भारतीय उपन्यासों के संदर्भ में पोषित, प्रमाणित और द्योतित करता है।

21वीं सदी के उपन्यासों के सूक्ष्मतम विवेचन-विश्लेषण के परिणामस्वरूप यह तथ्य स्वयंसिद्ध है कि इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति के मध्य अनवरत टकराव और संघर्ष की दुर्धर्ष क्रिया चरम स्वरूप में उपस्थित हो रही है। वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा पारिवारिक आयामों के अंतर्गत घटित होने वाली द्वंद्व की यह क्रिया समय-सापेक्ष वांछनीय और तर्कसंगत है। तीव्रगति से परिवर्तित हो रही 21वीं सदी की समाजिक-संरचना के सापेक्ष दोनों संस्कृतियों हेतु प्रतिरोधी संस्कृति के अंतर्गत व्याप्त श्रेष्ठ तत्त्वों के आत्मसातीकरण की आवश्यकता समय की माँग है। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति के संदर्भ में यह द्वंद्व, शोभन-अशोभन के स्वीकार-नकार का द्योतक है। कहना न होगा, प्राच्य संस्कृति के संदर्भ में, वैज्ञानिक-बोध, तार्किकता, स्वतंत्रता और अधिकार, यथार्थबोध जैसे पाश्चात्य संस्कृति के श्रेष्ठ तत्त्वों का स्वीकार तथा अन्य अतिवादी, अस्वाभाविक और अवांछित तत्त्वों का नकार प्राच्य संस्कृति और समाज के आधुनिक-आदर्श स्वरूप के मूर्तिकरण हेतु महत्वपूर्ण और अत्यंत आवश्यक है। समानांतर, पाश्चात्य संस्कृति के संदर्भ में मर्यादाबोध, कर्तव्य-भाव, परिवार-भावना, संतुलित आस्थावाद, अध्यात्मवाद आदर्शवाद, इतिहास गौरव, यौन-शुचिता आदि प्राच्य संस्कृति के श्रेष्ठ तत्त्वों, आयामों और अवधारणाओं को ग्रहण करने की आवश्यकता है। उपर्युक्त सामासिकता प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति के वैश्विक स्वरूप की धारणीयता और सार्वभौमिकता की वर्धक होगी। अतः संस्कृति के संदर्भ में परिवर्तन, द्वंद्व, स्वीकार और नकार की उपर्युक्त क्रिया सद्यः वांछनीय है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अंतर्गत 21वीं सदी के ग्यारह हिन्दी उपन्यासों का आधार ग्रन्थ के रूप में उपयोग हुआ है। प्रस्तुत शोध के आधार ग्रन्थ क्रमशः गीतांजलि श्री कृत **'तिरोहित',** चित्रा मुद्गल कृत **'गिलिगडु',** संजीव कृत **'सूत्रधार'**, मधु कॉंकरिया कृत **'सेज पर संस्कृत'**, काशीनाथ सिंह कृत **'रेहन पर रग्घू',** अनीता राकेश कृत **'गुरुकुल'**, लता शर्मा कृत **'सही नाप**

के जूते', कमल कुमार कृत **'पासवर्ड'**, रणेन्द्र कृत **'ग्लोबल गाँव के देवता'**, हृदयेश कृत **'चार दरवेश'**, तथा अलका सरावगी कृत **'जानकीदास तेजपाल मैनशन'** है। ध्यातव्य है, इन ग्यारह उपन्यासों में एक लघु उपन्यास भी शामिल है। उपर्युक्त उपन्यासों की विषयवस्तु और कथावस्तु के अंतर्गत प्राप्य सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक संरचनाओं और मत-मान्यताओं का प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति के संदर्भ में विवेचनात्मक, विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। शोध-प्रबन्ध के अन्तर्गत उपर्युक्त आधार ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण सहायक ग्रंथों तथा वांछित शोध-प्रविधियों का प्रयोग स्वयंसिद्ध है।

शोध-विषय के सूक्ष्मतम और सांगोपांग अध्ययन, विश्लेषण और मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त है तथा विषयवस्तु सापेक्ष प्रत्येक अध्यायों के अन्तर्गत उचित और वांछित उप-अध्यायों का विधान विद्यमान है।

शोध-प्रबन्ध का प्रथम अध्याय **'संस्कृति की अवधारणा एवं स्वरूप'** है। इस अध्याय के अंतर्गत संस्कृति, 'संस्कृति' शब्द-मीमांसा, संस्कृति विषयक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के मत-अभिमत, संस्कृति का स्वरूप, संस्कृति के प्रकार, संस्कृति और संस्कार का शाब्दिक और भाविक संबंध, संस्कृति तथा सभ्यता का पारस्परिक अन्तर्सम्बन्ध आदि संस्कृति सम्बद्ध आयामों का उप-अध्यायों के अंतर्गत विवेचन, विश्लेषण और मूल्यांकन किया गया है। यह अध्याय संस्कृति के संरचनात्मक और भावात्मक पक्षों, उपकरणों तथा प्रणालियों का सूक्ष्मतम विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह अध्याय शोध प्रबन्ध के मुख्य विषय के विश्लेषण, विवेचन और मूल्यांकन का प्राथमिक आधार प्रस्तुत करता है। इसी अध्याय के वर्ण्य-विषय को आधार स्वीकार करते हुए द्वितीय अध्याय के अंतर्गत प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों के प्रवृत्तिगत वैशिष्ट्य का विश्लेषण, अध्ययन और मूल्यांकन किया गया है।

शोध-प्रबन्ध का द्वितीय अध्याय **'प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति का स्वरूप'** है। प्राच्य संस्कृति के अंतर्गत भारतीय संस्कृति तथा पाश्चात्य संस्कृति के अंतर्गत पश्चिमी विशेषकर यूरोपीय संस्कृति के स्वरूप का सांगोपांग अध्ययन और विश्लेषण इस अध्याय की विषयवस्तु है। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियों के अंतर्गत भारतीय और यूरोपीय संस्कृति के चुनाव का कारण इन संस्कृतियों की पारस्परिक संबद्धता और अन्तर्व्याप्ति है। भारतीय संस्कृति अपने प्राचीन और

कल्याणकारी विशिष्ट स्वरूप के साथ संपूर्ण एशिया को प्रभावित करती हुई प्राच्य सांस्कृतिक-वितान का प्रतिनिधित्व करती है तो वही पाश्चात्य संस्कृति, पश्चिमी जगत के सांस्कृतिक-विस्तारवाद और उपनिवेशवाद की प्रक्रिया के संचालन के महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य से युक्त है। यूरोप द्वारा भूतकाल में स्थापित और प्रतिपादित सांस्कृतिक उपनिवेशवाद की अवधारणा तथा इस सांस्कृतिक उपनिवेशवाद का प्राच्य जगत पर पड़ने वाला सर्वाधिक विशिष्ट प्रभाव यूरोपीय-संस्कृति को पाश्चात्य-संस्कृतियों के समूह के प्रतिनिधित्व का अधिकार देता है। इस अध्याय के अंतर्गत प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति के अन्तर्गत मूलतः भारतीय और योरोपीय संस्कृति के अंगोपांगों का विश्लेषण, विवेचन और अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, साहित्यक, आर्थिक व्यवस्थाओं के वैशिष्ट्य के आधार पर प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति के प्रकृतिगत वैशिष्ट्य का अध्ययन, विश्लेषण और मूल्यांकन किया गया है। कहना न होगा, उपर्युक्त समस्त व्यवस्थायें प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति के स्वरूप को विशिष्टता प्रदान करने वाले सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण और उपकरण हैं। शोध प्रबंध का यह अध्याय प्राच्य अर्थात भारतीय तथा पाश्चात्य अर्थात यूरोपीय संस्कृति के मध्य द्वंद्व के सूक्ष्मतम विश्लेषण हेतु सम्यक शोध और चिंतन-दृष्टि प्रदान करता है।

शोध प्रबन्ध का तृतीय अध्याय **'शोध-गृहीत उपन्यासों का समीक्षात्मक परिचय'** है। इस अध्याय अन्तर्गत चयनित उपन्यासों का समीक्षात्मक परिचय प्रस्तुत किया गया है। शोध प्रबन्ध के आधार ग्रंथ 21वीं सदी के महत्वपूर्ण हिंदी उपन्यास हैं अतः 21वीं सदी के विशिष्ट और चयनित उपन्यासों का समीक्षात्मक परिचय शोध-प्रबन्ध के पूर्ण और सूक्ष्मतम अध्ययन के लिए वांछनीय है। शोधगृहीत उपन्यासों के इस परिचयात्मक अध्ययन के अंतर्गत उपन्यास का सामान्य परिचय, कथावस्तु, कथ्य, शिल्प विधान तथा वर्ण्य विषय में अंतर्निहित वैशिष्ट्य के उद्भावक बिंदुओं का परिचयात्मक विवरण निर्धारित और निश्चित शब्द सीमा के अंतर्गत किया गया है। शोध-प्रबन्ध का यह अध्याय शोध हेतु आधारग्रन्थ के रूप में गृहीत हिंदी उपन्यासों के शिल्प और भाव पक्ष का बोधक है। शोध-प्रबन्ध का यह अध्याय शोध कार्य के अन्तर्गत दृष्टि-विस्तार तथा पूर्णत्व के लिए महत्वपूर्ण और वांछनीय है।

शोध-प्रबन्ध का चतुर्थ अध्याय **'21वीं सदी के उपन्यासों में प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति का द्वंद्वात्मक गवेषण'** है। यह अध्याय शोध-प्रबन्ध का प्राण और आत्मा है। अन्य शब्दों में कहें तो इस अध्याय के अंतर्गत शोध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग प्रस्तुत है। यह अध्याय शोध-प्रबंध के शीर्षक से प्रत्यक्ष सम्बद्ध है। इस अध्याय के अंतर्गत इक्कीसवीं सदी के महत्वपूर्ण चयनित हिंदी उपन्यासों में प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति के द्वंद्व का विवेचनात्मक-विश्लेषणात्मक अध्ययन और मूल्यांकन और मूल्यांकन किया गया है। 21वीं सदी के उपन्यासों में प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति के सन्दर्भ में उपर्युक्त द्वंद्व के केंद्रीय आयाम क्रमशः वैयक्तिक द्वंद्व, सामाजिक द्वंद्व, आर्थिक द्वंद्व धार्मिक द्वंद्व और परिवार व्यवस्था के द्वंद्व के रूप में दृष्टिगत होते हैं तथा प्राच्य और पाश्चात्य सांस्कृतिक-व्यवस्था के विविध पक्षों को अभिव्यक्त करते हैं। प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों के द्वंद्व के इन्ही आयामों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन-विश्लेषण-अध्ययन प्रस्तुत अध्याय का मूल वर्ण्य विषय है। इस विवेचन-विश्लेषण के अतिरिक्त 21वीं सदी के उपन्यासों में घटित उपर्युक्त द्वंद्व के कारण तथा प्रभावों का भी विश्लेषणात्मक और मूल्यांकन परक अध्ययन, अध्याय की विषयवस्तु के ही अंतर्गत सम्मिलित है। यह अध्याय शोध विषय से संबंधित परिकल्पना के सत्यापन और शोध से प्राप्त निष्कर्षों के प्रतिस्थापन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपक्रम प्रस्तुत करता है।

शोध प्रबन्ध का पंचम और अंतिम अध्याय **'21वीं सदी के उपन्यासों का शैल्पिक वैशिष्ट्य'** है। इस अध्याय के अंतर्गत 21वीं सदी के उपन्यासों में घटित नवीन शैल्पिक-परिवर्तनों का अध्ययन किया गया है। 21वीं सदी के अंतर्गत सूचना-संचार क्रांति के परिणामस्वरूप घटित परस्पर अन्तर्व्याप्ति और अतिच्छेद की क्रिया ने न केवल उपन्यासों की विष्यवस्तु के अंतर्गत प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों के मध्य द्वंद्व को जन्म दिया अपितु औपन्यासिक संरचना के भाव और शिल्प-विधान को भी अत्यधिक प्रभावित और परिवर्तित किया। विषयवस्तु और शिल्प के स्तर पर घटित परिवर्तन की इस क्रिया ने उपन्यासों में विषयवस्तु और कथावस्तु के स्तर पर विशिष्ट और नवीन प्रवृत्तियों को जन्म दिया। कहना न होगा कि 21वीं सदी के उपन्यासों का परिवर्तित नवीन शिल्प संवर और विशिष्ट कथा-तंत्र 21वीं सदी के उपन्यासों में प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियों के द्वंद्व को मात्रात्मक और गुणात्मक

स्तर पर अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित करता है। अतः शोध प्रबंध का यह अध्याय अपनी विषयवस्तु द्वारा 21वीं सदी के उपन्यासों में घटित प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों के द्वंद्वं के विवेचन-विश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका और सहायता प्रदान करता है। शोध-प्रबन्ध का यह अध्याय शोध-विषय, शोध-कार्य तथा शोध-निष्कर्षों को विशिष्टता और पूर्णता प्रदान करता है।

निष्कर्ष, प्रत्येक अध्ययन, मनन और चिंतन का महत्तम बिंदु होता है। प्रस्तुत शोध-कार्य का निष्कर्ष शोध प्रबंध के **उपसंहार** शीर्षक के अंतर्गत परंपरानुसार प्रस्तुत है। शोध प्रबंध का यह भाग संपूर्ण शोध-कार्य और शोध-प्रबंध का सार-तत्त्व, आत्माकार रूप में प्रस्तुत करता है। 21वीं सदी के उपन्यासों में घटित प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियों कें द्वंद्व की सकारात्मक और नकारात्मक निष्पत्ति तथा इस निष्पत्ति का प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति के संदर्भ में सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव, उपसंहार की विषयवस्तु है। शोध प्रबंध के इस भाग के अन्तर्गत 21वीं सदी के उपन्यासों में प्राप्य प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति के ग्राह्य और त्याज्य तत्त्वों और उनके भविष्यगामी प्रभावों का भी विवरण प्रस्तुत करता है।